राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हों शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

वर्ष 66 अक्टूबर-दिसम्बर 2018 अंक 4

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ
1.	भजन	01
2.	अमूल्य शिक्षा .... *लालाजी महाराज*	02
3.	मन और माया से आत्मा को आजाद करो .... *डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज*	07
4.	उपदेश .... *अनमोल वचन*	13
5.	'व्यवहार प्रेममय होना चाहिये' .... *परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब*	16
6.	बायजीद बस्तामी .... *प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र*	24
7.	फूल जैसा जीवन खिले और महके	31

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी

सम्पादक

डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 66 अक्टूबर–दिसंबर 2018 अंक–4

भजन

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व – निवासी सदा अलेपा ताही संग समाई।।

पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुर माँहि जरा छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घट ही खोजो भाई।।

बाहर भीतर ऐकै जानौ, यह गुरु ज्ञान बताई।
जन नानक आपा चीन्हें, मिटै न भ्रम की काई।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

अमूल्य शिक्षा

आत्मा या रूह जिसका वर्णन बार–बार आया है, इस सृष्टि में सबसे अनोखी चीज़ है। यह ही सबसे महान एवं सार सत्य है। यह उस सूर्य की किरण या उस समुन्द्र की एक बूँद है जिससे हम अलग नहीं हैं और वही आत्मा का भंडार है, वही जीवन का केंद्र एवं स्रोत है और इसी केंद्र से विलग अथवा दूर हो जाना ही वास्तव में हमारे दुखों का कारण होता है। आत्मा के ऊपर से आवरण उतारने और सुरत शब्द के अभ्यास से आशय यह है कि हृदय में इस केंद्र का इष्ट बांधकर अर्थात उस आदर्श को हृदय में स्थित करके संत सद्‌गुरु से भेद (यानी अभ्यास का तरीक़ा) मालूम करके इसके खोज की चेष्टा की जाये। यदि किसी तरह तुम्हारे अन्तःकरण में यह भाव पैदा हो जाये कि सत् पुरुष मालिक हमारा केंद्र है और हम उससे निकले हैं तो तुम में प्रेम के भाव प्रस्फुटित होकर तुम्हें विशेष प्रकार की अवस्था प्रदान करेंगे, जिससे स्वतः ही आत्मा तथा माया आदि की समझ आती जाएगी।

यह केंद्र पूर्णतः आत्मिक है और शुद्ध चेतन है। इसमें नाम मात्र को भी काल और माया नहीं है। ज्यों–ज्यों तुम्हारे आवरण उतरते जायेंगे और आत्मिक प्रकाश की अनुभूति का अवसर मिलता जायेगा, वैसे ही वैसे इसी जन्म में प्रेम प्राप्त होता जायेगा। जिन लोगों में अब तक आध्यात्मिकता जाग्रत नहीं हुई है, वे इस केंद्र से बहुत दूर हैं। जिनके आवरण उतर गए हैं वे अपेक्षाकृत उससे अधिक निकट हैं। जितना उस केंद्र से बिलगाव और दूरी होती जाएगी उतने ही आत्म–पथ पर माया के आवरण पड़ते जायेंगे और जितना अधिक केंद्र से निकट आते जायेंगे उतनी ही आत्मिक आनंद की अनुभूति बढ़ती जाएगी।

नीचे स्थूल मंडल है और ऊपर सूक्ष्मता तथा पवित्रता की स्थितियां हैं। मनुष्य मध्यावस्था में माया के मंडल में है। आज हमारी–तुम्हारी कुछ भी

अवस्था हो परन्तु चूंकि हम उसके अंश हैं, हमारे लिए कभी मृत्यु नहीं है और न ही हम जीवन की देन से वंचित हो सकते हैं। हमें जो कुछ दुखों की अनुभूति है वह इन सब माया के आवरणों के कारण है और जैसे ही ये आवरण हटे हमको अपने असल रूप की समझ आयी, तब हम सुखी हो जायेंगे और उस समय हमारे सुख की कोई सीमा नहीं रहेगी। तब पूर्ण ज्ञान एवं शक्ति का केंद्र दृष्टिगोचर होता है। जो जितना इस केंद्र के निकट पहुंचेगा, वह उसी ढंग से शक्तिशाली और ज्ञानी होता जायेगा। यह एक सच्चाई है जो हर अभ्यासी को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

सुरत या आत्मा की दिव्यता और कार्यकलाप की महत्ता सभी संसार मानता है। इंसान बुद्धि का पुतला कहा जाता है। वह जिस ओर भी ध्यान करता है, उसी ओर आश्चर्यजनक परिणाम पैदा करके दिखलाया करता है। हर मामले में केवल उसे ध्यान देने की देर है, फिर क्या है जो वह नहीं कर सकता? इस ध्यान शक्ति के ऊपर अधिकार पाने पर आकाश मंडल की छिपी हुईं बिजली जैसी शक्तियां उसके संकेत पर काम करने को तैयार रहती हैं। इस स्थूल माया के मंडल में रहकर भी वह जब कभी मन को कार्य विशेष की ओर एकाग्र करता है तो कमाल कर दिखाता है– क्या इसमें कोई आश्चर्य है? फिर मनुष्य की हस्त कलाएं, उसके विचारों की ऊंची उडान तथा उसकी बुद्धि की खोज के तमाशे सभी तो इसके साक्षी हैं। उसमें हर बात को कर दिखाने की संभावित क्षमता है।

जब यह हाल आत्मा का है, जिसकी उपमा समुन्द्र की बूँद से दी गयी है, तो समझना चाहिए कि उस समुन्द्र की शक्ति और ज्ञान की भला क्या सीमा होगी? यह विचार करते ही बुद्धि चक्कर खाने लगती है अथवा आश्चर्यचकित हो जाती है। वह ज्ञान का, आनंद का और असल सत्ता का भण्डार है। इस संसार में जो कुछ प्रकृति का कार्य–कौशल तथा सौंदर्य दृष्टिगोचर हो रहा है वह आकस्मिक मात्र नहीं है, बल्कि वह किसी दिव्यता और प्रकृति की पूर्ण सामर्थ्य एवं सम्पन्नता की झलक प्रस्तुत करता है और परमात्मा की सत्ता का प्रमाण है। यदि किसी प्रकार यह बूँद उसी समुन्द्र में

प्रविष्ट हो जाये तो फिर इसके आनंद, शक्ति और ज्ञान का क्या ठिकाना ?

हमने सुख के प्रकार तथा सुख के मंडलों और उनके साधन वर्णन कर दिए हैं। इन सब का असल उद्देश्य यह है कि मनुष्य उस सुख के भण्डार की ओर प्रवृत्त हो सके, वरना फिर इसके बीच की अवस्थाओं में भटकाव होने का भय है। सुख के भण्डार की ओर वापस चलने के साधन कठिन नहीं हैं– इन्हें स्त्री–पुरुष, युवा–वृद्ध सब कर सकते हैं। इसके लिए यह बिलकुल आवश्यक नहीं है कि मनुष्य अपने जीवन के काम–काज आदि छोड़ दे, बल्कि आवश्यकता यह है कि आसानी से जीवन निर्वाह करते हुए सुरत शब्द का अभ्यास करता रहे। जो मनुष्य प्रसन्न रहता है वह परमात्मा की पूजा व उससे प्रेम बहुत आसानी से कर सकता है।

मालिक को प्रसन्न करने की कोशिश करना चाहिए और सारी बातें उसी की इच्छा के अधीन समझना चाहिए। 'तेरी इच्छा पूर्ण हो'– यह महामंत्र हर भक्त और प्रेमी की जिव्हा पर रहना चाहिए. जो इस पर चलने वाले हैं, वे मालिक के किसी काम में दोष नहीं देखते और सदा उसकी याद में प्रसन्न रहने की आदत सीखते हैं। संतों का साधन प्रेम मार्ग है। प्रेमी उस मालिक के बन्दों में अच्छाई देखने का इच्छुक रहता है और बुराई की ओर से अपनी आँखें बंद कर लेता है। विशाल ह्रदयता, विमल बुद्धि, इच्छा शक्ति और साहस आदि प्रभावों को ह्रदयंगम करने वाला किसी से घृणा नहीं करता और न दूसरों की शिक़ायत अपनी जिव्हा पर लाता है। उसको हर काम में 'मालिक की मौज़' दिखाई देती है। उसको शान्ति वाह्य ही नहीं बल्कि आंतरिक अनुभूति में होती है। वह बहिर्मुखी साधन नहीं बल्कि अंतर्मुखी साधन करता है। उसको हर जगह मालिक के प्रेम का प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। उसे मालिक के प्रेम और दया के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता और वह उस मालिक की मौज़ को सदा दृष्टि में रखते हुए किसी भी दुःख–सुख की परिस्थिति में मगन और संतुष्ट रहता है।

जो मनुष्य इस केंद्र की ओर चित्त की वृत्ति को लगाता है वह सिवाय मालिक के और किसी वस्तु को नहीं जानता – न ही वह किसी नाशवान

वस्तु के लिए प्रार्थना करता है और न अपने प्रेम, भक्ति के बदले का कोई विचार करता है। वह जो प्रार्थना करता है वह भी इसी प्रसन्नता के कारण से करता है, इस भावना से नहीं कि इससे उसका भला होगा। इससे वह उस परमात्मा के समीप जाता है और इस प्रकार वह नित्य–प्रति उसकी समीपता पाता जायेगा। उसको और क्या चाहिए ? कहा गया है कि परमात्मा को चाहने वाला 'सच्चा प्रेमी है' और संसार को चाहने वाला 'कपटी' है तथा परलोक चाहने वाला 'मज़दूर' है क्योकि वह भक्ति का बदला या महनताना चाहता है।

परमात्मा के प्रेमी का सांसारिक सुख पहुंचाने वालों अथवा ऐसे साधु भेषधारियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। भेषधारी की आशा होती है। प्रेमी के मनन का केंद्र परमात्मा (मालिके कुल) होता है। यह इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। भेषधारी ने जो स्वांग बनाया है, वह केवल धन्धे या संसार में भ्रमण करने आदि सांसारिक उद्देश्यों के लिए है। प्रेमी भक्त अपने अंतर में शब्द का अभ्यास करता हुआ परमात्मा के दर्शन का इच्छुक होता है। उसका काम दिखावे का नहीं होता।

धर्म दिखाने की वस्तु नहीं है। धर्म, साधन, मार्ग, पंथ – ये सब शब्द परमार्थ–पथ के पर्यायवाची हैं। सुरत का उतार प्रथम शब्द के द्वारा हुआ और यह सुरत जहां–जहां उतरी, वहां मंडल बना कर नीचे को आ गयी। ऊपर प्रकाश है और नीचे अंधकार है। सुरत तो शब्द की डोर को पकड़ कर ऊपर की ओर चलती है। इसकी गति उस मछली के समान है जो पानी की उलटी धार को पकड़ कर आगे बढ़ती जाती है। सुरत ऊपर की ओर शब्द की सहायता से एक स्थान (चक्र) पर पहुँच कर दूसरे स्थान पर जाने की इच्छुक होती है। और फिर ऐसा ही अभ्यास करते रहने के बाद सुरत निज भंडार में प्रविष्ट हो जाती है, जो अलख है, अगम है, जिसके प्रकाश का अनुमान हज़ारों, लाखों, करोड़ों और अनगिनत सूर्य–चंद्र के प्रकाश से भी नहीं लगाया जा सकता। न वहां काल है, न धर्म है, न माया है, न स्थूलता है– आकाश के शब्द की संज्ञा भी वहां के लिए प्रयोग नहीं की जा सकती।

वाणी और मन की वहां कोई जगह नहीं है, किसी अनुमान आदि की भी वहां पहुँच नहीं है। न वहां दिन है, न रात है, न इसका कोई नाम है और न कोई निशान है।

जो आत्मा वहां तक पहुँच गयी वह फिर सदा के लिए मुक्त हो जाती है, फिर इसको कभी माया के आवरणों का, जन्म–मरण के चक्र का, भय नहीं रहता है। जो वहां पहुँचा वह काल के चक्र से छूट गया। वह अमर हो जाता है। जो आत्मा वहां स्थिति प्राप्त कर लेती है वह अनंत आनंद में मस्त होकर ख़ुशी के गीत गाती हैं और इस अनुपम दशा को संत कबीर जैसी पूर्ण आत्माएं ही बता पाती हैंः–

हम वासी उसके जहां, सत्तपुरुष की आन !
सुख–दुःख कोई व्यापे नहीं, सब दिन एक समान!!
कहना था सो कह चुका, अब कुछ कहा न जाय !
एक रहा दूजा मिटा, गया कबीर समाय !!

कबीर साहब के दोहे

शब्द – जाके मन विश्वास है गुरु सदा हैं संग,
सौ सौ विधि ही जूझिये तौ न हो मत भंग।

नाम – सभी रसायन हम करी नही नाम सम कोय,
रंचक घट में संवरे सब तन कंचन होय।

ध्यान – ज्यूँ तिल मांही तेल है ज्यूँ चकमक में आग,
तेरा प्रेम तुझ में जाग सके तो जाग।

साक्षात्कार – उलट समाना आप में प्रगटी जोत अनन्त,
साहब सेवक एक संग खेलत सदा बसन्त।

प्रवचन गुरुदेवः डा.श्रीकृष्ण लालजी महाराज

मन और माया से आत्मा को आजाद करो

हर एक मजहब में मोक्ष प्राप्त करने का अलग–अलग तरीका है। हरेक आचार्य ने वक्त और जमाने के लिहाज से जन–साधारण की सुविधा को देखते हुए मोक्ष के तरीके को सहल बनाया है। इस कलियुग में परमात्मा का नाम ही मोक्ष का जरिया है। इससे सहल कोई उपाय नहीं है। पुराने जमाने में प्राणायाम और हठ्योग को लेकर चलते थे लेकिन अब इससे काम नहीं चलता। न तो अब इसके जानने वाले रहे और न अब लोगों की तंदुरुस्तियाँ, वक्त की कमी और न आजकल की खुराक ही प्राणायाम साधने के योग्य है। ऐसे लोग अब भी देखे गये हैं जो कहते हैं कि वे तीन–तीन घंटे प्राणायाम करते हैं लेकिन मन नहीं सधता। संत–मत में मन को काबू में करना सबसे जरूरी बात है। इसलिए इस मत के अभ्यासियों को प्राणायाम की जरूरत नहीं है। हाँ, गृहस्थ आश्रम में तंदुरुस्ती कायम रखने के लिये और वायु साधने के लिए भले ही कोई प्राणायाम कर ले लेकिन किसी जानकार से सीखकर करना चाहिये वरना नुकसान हो जायेगा।

हमारे जिस्म के अन्दर कई संलमते (आवरण, परदे) हैं उनमें सबसे भीतर परमात्मा बैठा है। संत उसको बाहर नहीं तलाश करते बल्कि अपने अन्दर देखते हैं। इस काम में दो बातें जरूरी हैं। पहली यह कि रास्ता जानना चाहिये और दूसरी यह कि ऐसा हनपकम (पथ प्रदर्शक) चाहिये कि जो खुद रास्ता चल चुका हो, उससे अच्छी तरह वाकिफ हो और जिसमें दूसरे को रास्ता बताने की योग्यता हो और वह तुम्हारा हमदर्द भी हो। इसके अलावा जिज्ञासु में पक्का इरादा रास्ता चलने का हो और रास्ता बताने वाले में उसकी पूरी श्रद्धा और विश्वास हो, तब रास्ता चला जा सकता है। रास्ता जानने वाले की पहरेदारों से जान पहिचान हो तभी वे अन्दर जाने देंगे वर्ना पीछे ढ़केल देंगे। कहने का मतलब यह है कि हनपकम (पथ प्रदर्शक गुरु) ऐसा हो जो परमार्थ के रास्ते की सब कठिनाइयों को जानता हो और

पन्थाई को उनमें से होकर निकाल ले जाने की पूरी योग्यता हो। वैसे तो रास्ते में बहुत सी रुकावटें और परदे हैं लेकिन खास–खास परदे सात हैं, सातवें आसमान के ऊपर परमात्मा बैठा है।

(1) **अन्नमय कोष–** जो मनुष्य का स्थूल शरीर है वह पंच–महाभूतों (तत्वों) से बना है। यह पहली रुकावट है। जब मनुष्य इंद्रियों द्वारा कोई आनन्द लेता है तो उसे उस आनन्द की याद बनी रहती है। जब–जब उस आनन्द की याद आती है तो फिर उसी आनन्द में फँस जाता है। नाक गंध का स्वाद लेती है। जिव्हा खाने का स्वाद लेती है, कान मीठी ध्वनि या गाने का स्वाद लेते हैं, वगैरह–वगैरह। ये सब मनुष्य की सुरत को बहिर्मुखी बनाते हैं और दुनियाँ में फंसाते हैं।

(2) **प्राणमय कोष–** मनुष्य के शरीर में जो हवा सांस के जरिए आती–जाती है और जिससे वह जिन्दा है वही दूसरा परदा है। अभ्यास में जब मनुष्य का ध्यान स्थूल शरीर से हट कर ऊपर को चढ़ता है तो वह इस दूसरे परदे पर आ जाता है। इसी सांस को साधने के लिए प्राणायाम किया जाता है जिससे नर्वस (स्नायु, नाजुक नाड़ियां) पाचन क्रिया, शरीर में रक्त का प्रवाह आदि बातें ठीक रखती हैं। सन्त–मत में प्राणायाम का अभ्यास नहीं कराया जाता क्योंकि यह बातें ऊँचा अभ्यास करने से स्वयँ सध जाती हैं।

(3) **मनोमय कोष–** तीसरा पर्दा मन का है जिसका विस्तार बहुत बड़ा है, मन में बेशुमार विकार और वासनायें भरी पड़ी हैं। मन उन्हीं का गुनावन उठाया करता है। ज्यादातर अभ्यासी यहीं अटके रहते हैं। बिना गुरु की मदद के मन से निकलना नामुमकिन है।

(4) **विज्ञानमय कोष–** चौथा पर्दा बुद्धि का हैं जो बहुत सूक्ष्म है। बुद्धि अपने ख़्याल उठाती रहती है। अधिकतर विद्वान और ऊँचे अभ्यासी इसी जगह ठोकर खाते हैं। उन्हें अपनी विद्या, बुद्धि, चतुराई आदि का गर्व हो जाता है और उसी में फंस कर रह जाते हैं। अभ्यासी की बुद्धि शंकाएँ पैदा कर लेती है। वह एक विषय पर कायम नहीं रहने देती।

(5) **आनन्दमय कोष–** पांचवा पर्दा आनन्द का है। जब मन सधने लगता

है तब जो आनन्द आने लगता है उससे अभ्यासी यह समझते हैं कि हम सब कुछ हो गये। लेकिन यह आनन्द स्थायी नहीं है। जब चिराग की रोशनी किसी ऑब्जेक्ट (वस्तु) पर पड़ती है तब वह चीज दिखाई देने लगतीं है। इसी तरह जब आत्मा का प्रकाश माया पर पड़ता है तब आनन्द मालूम होता है लेकिन यह आनन्द आत्मा का खालिस आनन्द नहीं है। आत्मा के आनन्द में एक तरह का ऐसा सरूर होता है जो अपने आप पर आधारित होता है और जो बयान नहीं किया जा सकता।

(6) **तुरिया अवस्था–** यह आत्मा का स्थान है। यहाँ अभ्यासी की स्थिति आत्मा में हो जाती है। यहाँ अभ्यासी 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगता है।

(7) **तुरियातीत अवस्था–** सातवां स्थान ईश्वर का है। इस स्थान पर अभ्यासी की अवस्था तुरियातीत की हो जाती है।

संत मत में ईश्वर को जानने का बहुत आसान तरीका है। मनुष्य का जिस्म दो चीजों से मिलकर बना है, एक मन और माया, दूसरी आत्मा। मन की तीन हालतें हैं। सबसे निचली हालत तमोगुण की है जिसमें हैवानी खवास (पाशविक वृत्तियाँ) रहती हैं। मन की दूसरी हालत रजोगुण की है जो बीच की अवस्था है। इस हालत में मन एक ख़्याल पर नहीं रह सकता। उसके विचार बराबर बदलते रहते हैं। कभी वह अच्छाई की तरफ जाता है, कभी बुराई की तरफ मन की तीसरी हालत सतोगुण की हैं जो पहली दो हालतों के बनिस्बत ज्यादा स्टेबल (परिपक्व) है। इसमें मन अच्छे–अच्छे विचार उठाया करता है। अभ्यासी के सब काम सतोगुणी मन की अवस्था पर आकर नेकी और भलाई के होने लगते हैं। लेकिन जब तक भलाई का ख़्याल सामने है तब तक बुराई का ख़्याल छिपे तौर पर मौजूद है। इसलिए यहाँ से भी गिरावट का डर रहता है। यह दुनियाँ कालदेश है। मन और माया काल के ही आधीन हैं और जहाँ काल का राज्य है वहां की सब चीजें नाशवान हैं। एक सोलर सिस्टम (सौर मण्डल) का मालिक ईश्वर है और जो सब सौर मण्डलों का मालिक है वह परमेश्वर है जो हजारों ईश्वरों

पर हुकूमत कर रहा है। उसी को सन्तों में सत्पुरुष दयाल और सूफियों में मालिके–कुल कहते हैं। जितने सितारे आप देखते हैं ये सब सूर्य हैं और उनका एक–एक मण्डल है और हर एक मण्डल में दुनियाँ आबाद है। ऐसे–ऐसे अनगिनत सौर मण्डल हैं। न मालुम अब तक कितने राम और कृष्ण के अवतार इन सौर मण्डलों में हो चुके हैं। अगर इन बातों का अन्दाज लगाने बैठें तो आदमी की अकल हैरान रह जाय।

मनुष्य की आत्मा अज्ञान में पड़ी थी और उसके ऊपर ख़्वाहिशात के पर्दे पड़े हुए थे। ईश्वर की कृपा हुई और उसने उसे इस दुनियाँ में भेज दिया कि ख़्वाहिशात को भोग कर सब परदे दूर हो जायें और आत्मा स्वयं प्रकाशित हो जाये। लेकिन हुआ इसका उलटा। बजाय परदे दूर करने के मनुष्य इस दुनियाँ की चीजों में आनन्द लेने लगा और बजाय आजाद होने के और उलझ गया।

इस दुनियाँ में मन का राज्य है। मन आत्मा से शक्ति लेकर उसी पर हुकूमत करता है। मन हमेशा बदलता रहता है और उसके प्रभाव में आकर हम भी बदलते रहते हैं। जब कोई वस्तु मिलती है तब सुख होता है और जब छिन जाती है तब दुःख होता है। यह दुःख–सुख लगातार चलता है। इस दुनियाँ का आखिरी अंजाम जुदाई है। जहाँ यह हालत है, वहाँ असली सुख कैसा ? संतों के देश यानी दयाल देश में आत्मा ही आत्मा है। वहाँ आत्मा ही आत्मा, प्रेम ही प्रेम, आनंद ही आनंद है। तुम उसी देश के वासी हो लेकिन अज्ञान के कारण अपने घर से दूर पड़े हो। अज्ञान अभी बना हुआ है, उसे दूर करो। तुमने इस दुनियाँ में आकर अपने देश को भुला दिया है और यहाँ की वस्तुओं से मोह पैदा कर लिया है। तुम कहते हो 'यह मेरा है'। यहाँ कोई किसी का नहीं है। अगर तुम्हारा है तो तुम्हारे मन के अनुसार चलेगा। लेकिन नहीं, वह अपने मन के अनुसार चलता है क्योंकि मन सबका अलग–अलग है। वह कभी आपके अनुसार नहीं चलेगा। इस दुनियाँ की एक खास बात यह है कि दो चीजें कभी एक सी नहीं होती। कुछ न कुछ फर्क अवश्य होता है। अगर फर्क न हो तो दो एक सी चीजें एक हो जायेंगी।

आत्मा पर से ख़्वाहिशात के परदे हटा दो। अपना रूप देखो। तुम्हारा रूप क्या है ? तुम ईश्वर के हो, ईश्वर तुम्हारा है। इस दुनियाँ में कोई तुम्हारा नहीं है। यहाँ की चीजों को एक-एक करके तजुर्बा करके छोड़ दो। ये तो तुम्हें तजुर्बा करने के लिये मिली थी। भ्रम से तुम इन्हें अपनी समझ बैठे। अगर गुरु के कहने में चलोगे तो यहाँ की चीजों का तजुर्बा भी होता चलेगा और उन्हें छोड़ते भी चलोगे। अगर बराबर गुरु के कहने में चलते रहोगे तो एक न एक दिन तुम्हें असली तजुर्बा यानी आत्म-बोध हो जायेगा। पहले गुरु के कहने पर विश्वास करो, उनमें श्रद्धा लाओ, उनका सत्संग करो और उनके कहने पर चलो। जो ऐसा करता है उसको आसानी से आत्म-बोध हो जाता है। जो तर्कवादी होते हैं उन्हें कठिनाई होती है। विश्वास से रास्ता जल्दी तय होता है।

अनुराग और वैराग्य दोंनों एक हैं। किसी चीज को अच्छा समझ कर कबूल करना अनुराग और किसी चीज को बुरा समझ कर उसे छोड़ना वैराग्य है। जो वस्तु ईश्वर की तरफ ले जाती है उसे पकड़ो, वही अनुराग है और जो वस्तु ईश्वर से छुड़ाती है उसे छोड़ते चलो, यही वैराग्य है। दोनों का लक्ष्य एक हैं। आपके यहां गुरु को प्यार करते हैं और जो चीज उसकी मरजी के खिलाफ है उसको छोड़ते चलते हैं। यह प्रेम का रास्ता है।

कई ऐसे भाग्यशाली होते हैं जिन्हें गुरु खुद प्यार करता है लेकिन ऐसे बहुत थोड़े होते हैं। ईश्वर करे आप में से हरेक ऐसा हो। कुछ ऐसे होते हैं जो गुरु को प्यार करते हैं। वे नहीं जानते कि वे क्यों ऐसा करते हैं। उन्हें कोई गरज नहीं होती, अगर कुछ होती भी है तो ईश्वर को पाने की गरज होतीं है। लेकिन यह गरज नहीं कहलाती। ये लोग भी भाग्यशाली हैं। कुछ ऐसे लोग हैं जो दुनियाँ से बेजार हैं और इससे छूटना चाहते हैं। ये आते हैं और गुरु से प्रेम करने लगते हैं। लेकिन परमार्थ की गरज के साथ-साथ इन्हें दुनियाँ की भी गरज होतीं है। ऐसे लोगों की संख्या बहुत है।

आपके यहां पहली चीज सतगुरु की तलाश है। सतगुरु वह है जो कामिनी, कांचन और यश- इन तीन चीजों से ऊपर हो। ईश्वर का पूर्ण भक्त हो। सिवाय ईश्वर की बात के दूसरी बात न करे। उसे आप से कोई

गरज न हो। उसके पास बैठने से मन शांत हो, उसकी कथनी और करनी एक जैसी हो, सिवाय दूसरों की भलाई के और कुछ न चाहता हो। अगर सौभाग्य से कोई ऐसा महापुरुष मिल जाय तो उससे अपना मन मिला दो, अपने मन को तोड़ दो। जब उसके मन में आ जाओगे तो मन मिल जायेगा। यही फनाइयत (लय) है जिसमें जिस्म तो मिलकर एक नहीं होता, मन एक हो जाता है, आदतें वैसी ही हो जाती हैं। यहां तक कि शक्ल भी बदल जाती है। तुम जो बनना चाहते हो, पहले उसकी ख़्वाहिश करो और फिर उसके लिए यत्न करो। जितनी कोशिश करोगे उतना मिलेगा।

जिस गुरु के ध्यान के साथ–साथ जीवन में एक बार भी आपको प्रकाश नजर आया है, तो समझ लीजिये कि वह सच खण्ड तक पहुंचा हुआ है। पहले ऐसे गुरु की तालाश करो फिर उसका सत्संग करो और उसका दिया हुआ नाम लो। वह नाम चाहे राम हो, कृष्ण हो, ॐ हो या चाहे कोई और नाम हो। जिस नाम को जप कर उसने परमेश्वर को हासिल किया है वही नाम तुम्हें भी परमेश्वर की प्राप्ति करा देगा।

- जीवन में सबसे बड़ी कला तपस्या है।
- मानव की सेवा करना मानव का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।
- दुर्बल और अज्ञानी लोग ही सबसे अधिक नुक्ताचीनी करते हैं।
- शुभ कर्म करना और परमात्मा की याद रखना यही असली परमार्थ है।
- सच बोलना और हलाल की कमाई पर गुजारा करना बहुत बड़ी तपस्या है और अगर इसी को कोई अन्त तक निभा ले तो यह अकेला ही भवसागर से पार कर देगा।
- सन्तों के हृदय में ईश्वर विराजता है। उनका शरीर ईश्वर का मन्दिर है।
- स्वार्थ और परमार्थ एक साथ नहीं रह सकते। केवल एक ही रह सकेगा

परमसंत डा.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

उपदेश

- ब्रह्मविद्या के अभ्यास के लिए ज़रूरी है कि साधन भी हो और साथ ही साथ गुरु का सत्संग।बग़ैर दोनों बातों को लिए हुए रास्ता तय नहीं हो सकता। जिसने अभ्यास को ज़रूरी समझा और सत्संग को त्याग दिया उसकी बुरी हालत हुई।

❖❖❖❖❖

- शमा जल रही है, यह परवाने के लिए पैगाम है कि आये और जले और ज़िन्दगी हासिल करे। उसका जलना ही लोगों को बुलाना है। अग़र मक्ख़ी नहीं आती और दूर रहती है तो इसमें शमा का क़सूर है या मक्खी का? गुरु का तो दया का हाथ हर वक्त है और हर वक्त उसकी ख़्वाहिश है कि साधक सीधे रास्ते पर आ जाये। लेकिन जब तक साधक दुनियाँ की वासनाओं को नहीं छोड़ता, उसको हाथ नज़र नहीं आता।

❖❖❖❖❖

- जो अभ्यास गुरु ने बताया है उसे करते रहो और गुरु में विश्वास रखो। दुनियाँ के मामलों में ज़्यादा मत फँसो। तबियत को शान्ति मिलेगी और आनन्द मिलेगा। यही असली फ़ायदा अभ्यास का है।

❖❖❖❖❖

- परमात्मा है और अवश्य है। अगर हम अपने दोष दूर करना चाहते हैं तो उसका ध्यान करना भी ज़रूरी है। उसके लिए जो साधन गुरु ने बताया है वह उसी की पूजा का है। विश्वास परमात्मा में और बताये गये साधन में होना चाहिए। गुरु तो केवल एक ज़रिया है। परमात्मा की मदद उसको मिलती है जो ख़ुद कोशिश करते हैं। लिहाज़ा ख़ुद मेहनत करो, फल मिलेगा।

❖❖❖❖❖

- परमात्मा के प्रेम के सभी अधिकारी हैं। जिसमें भी मनुष्य की आत्मा है वही उसका अधिकारी है। इनमें लाखों में से एक भी निराश नहीं जाता है। परमात्मा तो हर वक्त गोद फैलाये हुए तैयार बैठा रहता है, सिर्फ़ उसकी ओर जाने की ज़रूरत है। निराशा के ख़्याल को अपने दिल में जगह न दें, इससे कमजोरी आती है। उसमें विश्वास रखिये, जरूर कामयाबी होगी। ज़रूरत इस बात की है कि जो बात (गुरु द्वारा) बताई जावे उस पर अमल करने की कोशिश की जाय क्योंकि गुरु रास्ता चल चुका है, वह उसकी गुलत्थियों और रास्ता से वाक़िफ है।

  फ़ारसी का एक शेर है– ''ब मय सज्जादा रंगीं कुन अगर पीरे मुग़ाँ गोयद''– अगर तेरा गुरु कहे कि अपने पूजा के कपड़ों को (जो बहुत पवित्र हैं) शराब से (जो अत्यन्त अपवित्र है) रंग दे, तो तुरन्त वैसा कर डाल, क्योंकि रास्ते को जानने वाला उसके ऊँच नीच से खूब परिचित है। मतलब यह कि गुरु यदि धर्मशास्त्र के विपरीत भी कोई काम करने को कहे तो कर डालना चाहिए क्योंकि वह खूब जानता है कि उसमें साधक का क्या हित निहित है।

  गुरु पर विश्वास करके और उसे अपना हितैषी जान कर उसके कहने पर चलना चाहिए। इसी का नाम 'विश्वास' है। ऐसा करने से ईश्वर प्रेम मिलेगा। प्रेम ही सीधा और सच्चा रास्ता है। यदि आरम्भ से ही गुरु की आज्ञा मानने में तर्क–वितर्क किया जायेगा कि अमुक बात जो बताई गई है वह क्यों और किस लिए की जाए, तो सफलता मुश्किल से होगी क्योंकि आरम्भ में बात न तो समझ में आ सकती है और न समझाई जा सकती है। कोशिश करने और विश्वास रखने की ज़रूरत है। ज़रूर कामयाबी होगी। फुरसत की कोई भी साँस उसकी याद से खाली न जाने दीजिए।

❖❖❖❖❖

- दुनियाँ में सब कामों के लिए समय मिलता है लेकिन नहीं मिलता तो राम का नाम लेने के लिए के लिए समय नहीं मिलता? और सिवाय राम नाम के कोई काम नहीं आता। इसी मूर्खता में तमाम संसार फँसा हुआ है और तुम भी फँसे हुए हो। अगर जीवन का कुछ लाभ उठाना चाहते हो तो इस मूर्खता को दूर करो और जहाँ तक संभव हो (गुरु का) सत्संग करो जिससे उन्नति हो। इस रास्ते में अपना बल कुछ काम नहीं देता। राम नाम जो सच्चे दिल से लिया जाय उसकी महिमा सबसे ज़्यादा है। सत्य का पालन करो। दुनियाँ के झगड़ों से दूर रहो, तभी कुछ फायदा हो सकता है।

❖❖❖❖❖

- असली फ़ायदा यह है कि अन्तर का शब्द जारी हो जाय जिससे आगे का रास्ता स्वतः खुल जाता है। पूजा में सुहावने दृष्यों को देखना या अद्भुत शक्तियों का आ जाना असली फ़ायदा नहीं है। असली फ़ायदा यह है कि मन 'सत्' पर आ जाय और दिल में परमात्मा का प्रेम प्रकट हो।

❖❖❖❖❖

- प्रेम सेवा से बढ़ता है। गुरु के शरीर की सेवा शरीर से करो, रुपये-पैसे से सत्संग की मदद करो, दिल से सब की भलाई चाहो, गुरु के स्वास्थ्य और उद्धार के लिए परमात्मा से प्रार्थना करो,गुरु जो काम बतावें उसे चाव से और मन लगा कर करो। इससे गुरु के दिल में मौहब्बत और ज़्यादा पैदा होगी जिसका असर तुम पर पड़ेगा और तुम से प्रेम बढ़ेगा।

निंदक लियो राखिये, ओगन कुटी छवाय।
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

प्रवचन परमसंत डॉ.करतार सिंहजी साहब

"व्यवहार प्रेममय होना चाहिये"

पहले प्रसाद को परमपिता परमात्मा के चरणों में बड़ी दीनता से अर्पित करना चाहिये। प्रसाद को जब बांटा जाय, तब बाँटने वाला अपने इष्टदेव में लय होकर प्रसाद बाँटे। जो भी प्रसाद को ले, वह अपने गुरुदेव–इष्टदेव के ध्यान में लय होकर ले। ऐसे प्रसाद से रोगियों के रोग तक ठीक हो जाते हैं। परन्तु हम लोग प्रसाद हँसी–मजाक में बाँटते और लेते हैं। ऐसा करने से प्रसाद की महत्ता चली जाती है।

भगवान तो सरलता के, प्रेम के भूखे हैं। हमें प्रभु के चरणों में प्रसाद अनुरोध से, दीनता से, बच्चों जैसी सरलता से, समर्पित करना चाहिये। ऐसा करने पर परमपिता परमात्मा और हमारे पूर्वज प्रसाद वास्तव में स्वीकार करते हैं। जब प्रसाद लें, सरलता से, शान्ति से लें। सत्संग में जब तक बैठें तब तक तो कम से कम शांत रहें ही। ईश्वर की जो कृपा बरस रही है, उसका अनुभव यहां करें और उसी भावना से घर वापस लौटें। थोड़ी देर के लिए ही सही, कृपा का अनुभव करें। सब मिलकर ईश्वर से, गुरूदेव से प्रार्थना करें कि हे प्रभु! हे गुरुदेव! आप हमारी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करें।

प्रभु दयानिधि हैं। उनके गुणों की सराहना करनी चाहिये। मन ही मन प्रभु के गुणों पर विचार करें तथा उन्हें अपनाने का प्रयास करें। शरीर को ढीला छोड़ दीजिए। मन में विचार हों तो मन से कह दीजिए कि थोड़ी देर के लिये इनकी गुनावन न करे। कोई तनाव न हो। हमारे और परमात्मा के बीच अहंकार की जो दीवार है, उसे तोड़ दीजिये। हम समझते नहीं हैं, अकारण ही संकल्प–विकल्प उठाते रहते हैं, ख़्यालों को और मजबूत करते रहते हैं। इसका अभ्यास करना है कि हमारे भीतर में विचार न उठें या कम से कम उठें। साधना यह करनी है कि हमारा मन हमारे अधीन हो जाय।

परमपिता परमात्मा ने हमें बड़ा विचित्र उपकरण 'मन' दिया है। इसका सदुपयोग करना है। आवश्यकता हो तो विचार उठा लिया, नहीं तो इसको शान्त रखना चाहिये। जिस प्रकार से भगवान शिव का नन्दी बैल उनकी सेवा में बैठा रहता है, उतनी ही सरलता से हम अपने मन रूपी नन्दी को बैठाये रखें।

साधना यहीं करनी है कि यह मन प्रेमस्वरूप परमात्मा के चरणों में प्रेममय होकर, स्थिर होकर बैठे। इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं है। बस करना यह है कि जैसे निद्रा में आप सोते हैं उस समय आप क्या करते हैं। कुछ भी तो नहीं करते। बड़ा सरल है। शरीर शिथिल है, मन तनाव रहित है। आप निद्रा देवी का आनन्द ले रहे हैं। इसी प्रकार आपको जागृत अवस्था में ही सुषुप्ति की अवस्था में रहना है। जागृति–सुषुप्ति को अपनाना है क्योंकि इस प्रगाढ़ जागृति–सुषुप्ति में ही प्रभु की प्राप्ति होती है। जब तक हमारी जागृति–सुषुप्ति अवस्था नहीं होती तब तक हमारी परमात्मा के साथ तदरूपता नहीं होती। हमें अपने आपको तनाव–मुक्त करना है।

इसी प्रकार प्रभु के चरणों में जाकर अपने बल का प्रयोग नहीं करते। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक – किसी प्रकार के बल का प्रयोग नहीं करते। केवल उसकी (प्रभु की) इच्छा पर सब छोड़ देते हैं। अपने आपको पूर्णतः उस प्रेमास्पद के चरणों में समर्पित कर दें। आप देखेंगें कि कुछ समय बाद आपके भीतर में एक अजीब तरह की शान्ति, आनन्द की अनुभूति होने लगेगी।

मन अकारण ही कोई न कोई समस्या खड़ी कर देता है। जीने का तरीका यह है, जैसा भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि अनासक्ति से कार्य करें। संसार के प्रति पकड़ को ढीला कर दें। जो अतीत में हो चुका है, उसे क्यों पकड़ें। भूल जाइये। यदि परमात्मा में विश्वास है तो कल की चिन्ता क्यों ? यह हमारी भूल है, हमारा अहंकार है, नासमझी है। हमें ईश्वर का आश्रय लेना है। ईश्वर की गोद में बच्चे की तरह बैठना है। वह हमारा

सच्चा पिता है। पिता के रहते हुए बच्चों को चिन्ता की क्या आवश्यकता ? यह जीने का तरीका है।

हमें वर्तमान में ही प्रभु की कृपा को पाना है। यही आत्मिक उन्नति का समय है। इसलिए बाकी सभी समस्याओं को छोड़कर प्रभु के चरणों का आश्रय वर्तमान में ही ले लें। यदि किसी से हमारी शत्रुता है तो उसे क्षमा कर दें। क्षमा ही परमात्मा का रूप है। यदि आप परमात्मा की पूजा करना चाहते हैं तो आपको परमात्मा के गुणों को सराहना होगा, उन्हें अपनाकर अपने व्यवहार में विकसित करना होगा। परमात्मा का गुण है क्षमा करना। उसी प्रकार का आपका भी स्वभाव बन जाय। आपको दुनियाँ में कोई कितनी ही उत्तेजना दे, शत्रुता करे, आप उसे क्षमा कर दें। यदि सत्संगी यह कहता है कि उसने ऐसा किया, उसने वैसा किया, तो आपमें और एक सामान्य व्यक्ति में क्या अन्तर है। विचार ही आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार हैं। विचार विमुक्त होना है। विचार विमुक्त तब तक नहीं हो सकते जब तक विकार मुक्त नहीं होंगे। यह सत्संगी भाईयों की भूल है कि छः–छः घंटे एक आसन पर बैठ कर पूजा करते हैं। इससे यह अहंकार हो जाता है कि मैं तो बहुत पूजा करता हूँ। इससे कितना लाभ होता है, यह तो वही व्यक्ति जानते हैं। वास्तविक लाभ तब जानना चाहिये जब हमारे भीतर में वे ही गुण समा जाय जो ईश्वर के होते हैं। ईश्वर पूजा, गुरु पूजा, इष्ट पूजा यही है। उनके गुणों को सराहें और उन्हें अपनाने का प्रयास करें।

गुरु दर्शन, ईश्वर दर्शन यही है कि ईश्वर, गुरु या इष्ट के जो गुण हैं वे सब हमारे में समा जायें। आत्मा–परमात्मा या जीव और परमात्मा में इतना ही अन्तर है कि परमात्मा सागर है और जीव उसका अंश है। मात्रा का अन्तर है, गुणों में अन्तर नहीं है। विकारों के कारण हमारे गुण छिप गये हैं, सूर्य अस्त हो गया है। साधना यही करनी है कि हम सूर्य की तरह प्रकाशित हों। हमारे स्वभाव में वे ही गुण हों जो ईश्वर के हैं। उन गुणों का विकास करें। पुरातन विचारों से धीरे–धीरे मुक्त होकर शुद्ध हों और सद्गुणों, सद्विचारों को अपनाकर सब कार्य करें। धीरे–धीरे मन को प्रभु के

चरणों में लय करते जायें। आगे चल कर इसी रास्ते से जब चाहेंगे निर्विचार हो जायेंगे और जब चाहेंगे इस संसार के साथ व्यवहार कर लेंगे। कोशिश यह करनी चाहिये कि हम निर्विचार और निर्विकार हों।

पूजा में पहले हम प्रार्थना करते हैं। परमात्मा के गुणों को याद करते हैं, उन गुणों को सराहते हैं। उसके लिए वायुमण्डल, वातावरण बना लिया, परमात्मा की नजदीकी प्राप्त कर ली। अब उसकी प्रार्थना करो, जो मांगना है मांगो। फिर उसकी प्रसादी लेने के लिए अपने आप को उसके समर्पण कर दो। उसकी कृपा की गंगा में स्नान करो, डूब जाओ। यदि आप अपने मन को दृढ़ करना चाहते हैं तो थोड़ा–थोड़ा अभ्यास भी आज्ञा चक्र पर (या जैसा भी आपको आपके गुरु ने बताया हो) करें। प्रसाद लेने का जो तरीका ऊपर बताया गया है, अवश्य अपनाना चाहिये। यह घर में ही गुरु के साथ, ईश्वर के साथ सत्संग हो जाता है।

इसके साथ–साथ अपने गुरुदेव के, इष्टदेव के, प्रवचन पढ़ने चाहिये। थोड़ा पढ़िये, मनन अधिक करिये और देखिए कि उसका भाव क्या है। जिस बात पर हम मनन करते हैं वह दृढ़ हो जाती है, आपके मन पर अंकित हो जाती है, आपका स्वभाव बन जाती हैं। आम तौर पर सत्संगी लोग मनन नहीं करते, करना चाहिये। गुरु महाराज का, पूज्य लाला जी महाराज का, जो साहित्य है वही हमारे लिए गीता है, रामायण है, कबीर साहब, गुरु नानक साहब की वाणी है। उन्हें पढ़ना चाहिये, उन पर मनन करना चाहिये। शब्दों में जो गंगा छिपी है उसमें भीतर घुस कर स्नान करना चाहिये। जैसे सागर की गहराई में जाकर मोती प्राप्त किये जाते हैं उसी तरह हमें अपने इष्टदेव के वचनों की गहराई में जाना चाहिये। जितना आप इष्टदेव की वाणी का मनन करेंगे उतने उनके नजदीक होते चले जायेंगे।

एक बात और कह दूँ। यह हमारे मन में खाली विचार है कि केवल आँखें बंद करके बैठने से ही लाभ होता है। यह ठीक है कि जैसे प्रातः स्नान करने से शरीर साफ हो जाता है, स्फूर्ति आ जाती है, इसी तरह प्रातः काल स्नान करने के बाद कुछ समय के लिए ईश्वर का चिन्तन करने से, पूजा

करने से कुछ और ताजगी आ जाती है। परन्तु जिन को समय नहीं मिलता उन्हें परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं है। सुबह से शाम तक हम जो भी कार्य करते हैं, उन सभी को हम ईश्वर की पूजा का रूप बना लें, यज्ञ बना लें।

ईश्वर से लौ लगाये रहें। यह जो आम पूजा की जाती है उससे वह हजार गुणा अच्छी है। हम प्रतिक्षण उसकी याद में रहें। गुरु महाराज को हमेशा अपने सामने देखें। सबके साथ सुन्दर व्यवहार करें। हमारा व्यवहार सेवा का रूप लिये हुए हो। हमारी सेवा प्रत्येक को आनन्द देने वाली हो। हमारी पूजा दूसरे की प्रसन्नता के लिये, शान्ति देने के लिये हो, शोषण के लिये नहीं हो।

सत्संगी वही हो सकता है जो 'वीर' हो। इसीलिए भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं 'वीर' बनो। वीरता को अपना कर युद्ध करो। यह संसार तो कुरुक्षेत्र है। प्रत्येक को लड़ना है। किससे लड़ना है? यह जो भीतर में हमारा मन है उससे। बुद्धि की चंचलता को स्थिर करना है, सन्तुलन में लाना है। इनसे लड़कर जब तक हम विजय प्राप्त नहीं कर लेते तब तक न तो हमारा व्यवहार संसार के साथ सुन्दर बनेगा और न आप प्रभु चरणों के अधिकारी बनेंगें।

अपनी दिनचर्या को ही पूजा का, यज्ञ का, दान का रूप दे दीजिए। सबके साथ मधुरता का व्यवहार करें। मधुर बोलिये, प्रेम से बोलिये, प्रेम का व्यवहार करें। जितनी आप सेवा करते हैं, उसका मुनासिब पैसा लीजिये। ईश्वर की हुजूरी, ईश्वर की प्रसन्नता के लिये, ईश्वर का ही काम समझकर हमें दफ्तर में काम करना चाहिये। घर–परिवार में पति–पत्नि, बच्चों सबको ईश्वर रूप समझकर उनकी सेवा करें। संसार को प्रभुमय समझकर प्रसन्नता से कार्य करें, सबकी सेवा करें। प्रातः–सांय जब भी समय मिले पूजा पर बैठें। जो कार्य में व्यस्त रहते हैं उनका मन स्थिर रहता है। जो आलस्य में व्यर्थ बैठे रहते हैं उनका मन स्थिर नहीं होता। वे विचारों में फँसे रहते हैं और अपने मन को गन्दा करते रहते हैं।

प्रत्येक क्षण मन पर निगाह रखनी चाहिये। यह ऐसी–वैसी निरर्थक बातें करता रहता है। इससे आपको ही नुकसान होता है। आपके भीतर के बुरे विचारों से वायुमण्डल भी दूषित होता है। आपके शरीर से प्रतिक्षण तरंगे निकलती रहती हैं जो सारे वायुमण्डल को शुद्ध अथवा अशुद्ध करती रहती हैं। इसीलिये कहते हैं कि संत जहाँ जाता है वह स्थान तीर्थ बन जाता है। उसके अच्छे विचारों की, आत्मा की तरंगे वहाँ फैल जाती हैं और वह स्थान शुद्ध हो जाता है।

मंदिर, गिरजाघर, गुरुद्वारे जाइये, वहाँ अपका मन लगेगा। हजार–हजार साल के मजार हैं उनके दर्शनों के लिए जाइए। अब भी वहाँ जाकर बैठते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि किसी ने नशा पिला दिया हो। वो संत तो वहाँ शरीर रूप से नहीं हैं परन्तु उन्होंने उस स्थान को अपनी तरंगों से इतना रंग दिया है कि जो भी श्रद्धा से वहाँ आता है उसको प्रसादी मिलती है। हम भी कई स्थानों पर गुरु महाराज के साथ गये, हमें विशेष कृपा मिली।

न तो हम मनन करते हैं और न ही हम ईश्वर के, गुरु के गुणों को सराहते हैं और न यह प्रयास करते हैं कि गुरु की सुन्दरता को, उनके गुणों को अपनायें। सत्संग में इतने दीर्घ काल से आने पर भी हमारी घृणा की आदत, लड़ने की आदत, खाने–पीने की आदत नहीं जाती। रसना का रस, आंखों के देखने का रस वही चल रहा है। बातें करने में वही रस आता है, जाता क्यों नहीं ? न तो हमने मनन किया है और न ही हमने ईश्वर के गुणों की पूजा की है।

इन्सान की इंद्रियाँ और मन अपना ही खेल खेल रहे हैं। मन संकल्प–विकल्पों में फँसा हुआ है। वह शरीर और इंद्रियों को अपने वश में किए हुए है। वह बुद्धि के, विवेक वैराग्य के गुणों को अपनाता ही नहीं। इसलिए मन अपनी शक्ति को खो चुका है, चंचलता में फँस गया है। आत्मा परमात्मा से, गुरु से प्रकाश नहीं लेती। हमारा मन प्रश्न उठाता रहता है। गुरु और परमात्मा की तरफ उन्मुख ही नहीं होता। अपने को प्रकाशित नहीं करता। मनमानी करता है, दिखावा करता है कि मैं पूजा करता हूँ।

गम्भीरता से प्रेम की तरफ उन्मुख होना पड़ेगा। बुद्धि को परमात्मा के, गुरु के, गुणों को अपनाना होगा और अपने मन पर उनका प्रकाश डालना पड़ेगा। मन को अपने अधीन करना पड़ेगा। तब ईश्वर प्रेम का संगीत बजेगा। तभी हम शान्ति और आनन्द को प्राप्त करेंगे। असली शान्ति तो आत्मा में है।

ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। जितनी आपकी अपनी शक्ति लग सकती है, उसका उपयोग करना चाहिये। पूज्य लाला जी महाराज ने तथा पूज्य गुरु महाराज ने कहा है, लिखा भी है कि हमनें अपनी जो–जो कमजोरी अपने गुरुदेव से कह दीं वे तो दूर हो गयीं। जिनको हमने कुछ लज्जा के कारण छिपाकर रखा, हमसे अब तक नहीं छूटीं। यदि गुरु को अपना बना लिया है और यदि कोई कमजोरी आपसे नहीं छूटती तो उसे गुरु से अवश्य कह दीजिये। गुरु आपकी सेवा करेंगे, आपके लिए दुआ करेंगे, साधन करेंगे। उससे आपको अवश्य बल मिलेगा।

प्रार्थना करने, मनन करने, आचार–व्यवहार शुद्ध करने, सदगुणों को अपनाने तथा सद्‌व्यवहार करने के बिना रास्ता नहीं चलेगा, साधना नहीं हो सकती। मन, शरीर, इंद्रियों पर अंकुश रखें। बुद्धि मन को वश में रखें और बुद्धि आत्मा और गुरु से प्रकाशित होवे। यदि हम इन बातों को याद रखेंगे तो थोड़े ही दिनों में हमारी प्रगति विकसित होने लगेगी। आप स्वयं तथा आपके मित्र एवं परिवारीय जन अनुभव करेंगे कि आपमें विशेष परिवर्तन आ गया है। आपके स्वभाव में शान्ति होगी, प्रेम और करुणा होगी। आप जहाँ बैठेंगे, आपके पास जो भी बैठेगा उसे भी शान्ति का अनुभव होगा। आप एक सुगंधित पुष्प बन जायेंगे। आपसे सुगन्ध का प्रवाह होने लगेगा। एक ही व्यक्ति को सेवा नहीं करनी है। आप सबको मिलकर सुगन्धित पुष्प बनना है और अपनी सुगंधि से चारों ओर परमात्मा के नाम को फैलाना है। अपने गुरु के नाम को प्रसारित करना है।

यदि व्यवहार शुद्ध नहीं हुआ तो आपकी बदनामी तो होगी ही, साथ में आपके गुरु तथा सत्संग की भी बदनामी होगी। महात्मा बुद्ध ने इस

पर बड़ा जोर दिया है कि किसी भी तरह से संघ की बदनामी न हो। हमें सचेत रहना है कि हमें अपने संघ को, गुरु को तथा सत्संग को बदनाम नहीं करना है। प्रत्येक सत्संगी का व्यवहार सामान्य व्यक्ति से ऊँचा होना चाहिये। सभी भाई–बहिन आपस में एक परिवार की तरह रहें, प्रेम से रहें। दूसरे का दुःख अपना दुःख, दूसरे का सुख अपना सुख समझें। तभी हमारी प्रार्थना 'सब का भला करो भगवान' का सही मतलब निकलेगा।

हम हर काम प्रभु का काम समझकर प्रभु के लिए करें। परमात्मा हम सबका पालनहार है, हम सब उसकी संतान हैं। पिता जो भी करता है, संतान के हित के लिए ही करता है। इसलिए परिवार में प्रेम से रहें। संसार के सब गुणों के समूह का नाम परमात्मा है। यदि हम प्रत्येक काम में परमात्मा की स्मृति रखें तो हमारा काम ख़ुशी से होगा तथा स्वयं हमको भी प्रसन्नता का अनुभव होगा। हम ईश्वर के गुणों को याद रखें। सुबह से लेकर रात तक जो भी काम हम करें, ईश्वर के गुणों की याद के साथ करें। इसी से हमारा उद्धार हो जायेगा। हमारा मन निर्मल हो जायेगा, ईश्वर–मय हो जायेगा। हमारा मन जो संसार के साथ, अज्ञान के साथ चिपक गया है, मुक्त हो जायेगा। हमें मोक्ष प्राप्त हो जायेगी। हम जनम–मरण के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे। हमारे भीतर जो संस्कार हैं उनसे हम मुक्ति पा लेंगे। तो ईश्वर के गुणों को अपनाते रहें। ईश्वर क्या है ? सब कुछ प्रेम–मय हो जाय। हमारी वाणी में, हमारे व्यवहार में प्रेम हो। इससे अच्छी पूजा और क्या हो सकती है। सच्चे बनें, स्वयं प्रेमरूप बनें और अपने व्यवहार द्वारा ईश्वर के प्रेम को विस्तार दें। हम जितना इस प्रेम को बाँटेंगे उतना ही यह बढ़ेगा।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं।
सब अंधियारा मिट गया, दीपक देखा माही।।

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

बायजीद बस्तामी

तपस्वी बायजीद बस्तामी का ज्वलंत प्रेम अडिग विश्वास और वैराग्यपूर्ण जीवन प्रशंसनीय था। बचपन से ही वे ज्ञान के प्रेमी और चरित्र के पवित्र थे। वे ईश्वर चिन्तन में सदा मस्त रहते। उनका जन्म एशिया के बस्ताम देश में हुआ था। उनके दादा मूर्ति पूजक थे और उनके पिता पक्के मुसलमान। उनकी बाल्यावस्था में ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। उनकी माता अत्यन्त धर्मपरायण थी। धर्म और नीति की शिक्षा दिलाने के लिए माता ने पुत्र को एक योग्य शिक्षक के पास भेजा। एक दिन उन्होंने पाठशाला में कुरान का यह वचन पढ़ा – 'मुझे और माता पिता को धन्यवाद दो।' इसका अभिप्राय पूछने पर शिक्षक ने विस्तार से सब बातें समझाईं, जिन्हें सुनकर बायजीद के मन में उथल–पुथल मच गई। तुरन्त गुरु की आज्ञा लेकर घर पर आकर उन्होंने अपनी माता को कुरान का वचन सुनाकर कहा– ''माँ! मैं इस विलक्षण बात को समझ नहीं पाया। दो मालिकों की सेवा एक साथ किस तरह की जा सकती है ? या तो ईश्वर से तुम मुझे माँग लो जिससे मैं आजीवन तुम्हारी सेवा करता रहूँ, नहीं तो मुझे ईश्वर को सौंप दो जिससे मैं उसका दास बनकर जीवन बिताऊँ।

माता ने कहा – ''बेटा! मैं तुझे सदा के लिए ईश्वर को सौंपती हूँ। मेरे प्रति तेरा अब कोई कर्त्तव्य नहीं रहा। तेरे घर का अपना सारा हक मैं आज से छोड़ती हूँ। जा उस परवरदिगार का दास होकर जीवन बिता।''

माता की आज्ञा पाकर बायजीद देश छोड़कर निकल पड़े। तपोवन में रहकर अन्न और निन्द्रा का त्याग करके, तीस वर्ष तक उन्होंने कठोर साधना की। उन्होंने एक सौ तेरह ऋषियों की सत्संगति की थी, जिससे उन्हें बहुत फायदा हुआ। महर्षि सादिक की संगति में भी वे रहते थे। एक दिन सादिक ने उनसे अलमारी में से पुस्तक लाने को कहा बायजीद ने आश्चर्य से पूछा– 'अलमारी कहाँ है ?'

सादिक– 'बायजीद! इतने समय में मेरे पास रहते भी तुम्हें यह मालूम नहीं कि अलमारी कहाँ है।'

बायजीद– 'गुरुवर! अलमारी देखने से मुझे क्या सरोकार था? आपके दर्शन समागम से और आपकी वाणी से मुझे बहुत से फायदे हुये हैं, मैं दूसरी बातों से क्या सरोकार रखता?'

सादिक– 'बहुत ठीक। तुम्हारी साधना पूरी हुई है, तुम बस्ताम लौट सकते हो।'

बहुत वर्षों की साधना के बाद उन्नत जीवन का लाभ पाकर बायजीद अपनी माता के दर्शन के लिए बस्ताम आये। एक दिन प्रातःकाल वे अपने घर के द्वार पर पहुँचे तो उनकी माता प्रार्थना कर रही थीं– ''हे प्रभु! मेरे दुःखी पुत्र का मंगल कर। साधुजनों को उस पर प्रसन्न कर और उसके जीवन को धर्म–बल से बलवान कर।'' माता की यह प्रेमपूर्ण प्रार्थना सुनकर बायजीद हर्ष से रोने लगे। किवाड़ खटखटाकर उन्होंने माता को पुकारा– ''माँ! तेरा यह दुःखी पुत्र यहाँ हाजिर है।'' माता ने तुरन्त द्वार खोलकर प्रेमाश्रु बहाते हुए अपने पुत्र को भुजाओं में भर लिया और कहा– ''पुत्र! माता की सुध बहुत वर्षों बाद ली। तेरी जुदाई का बोझ उठाकर मेरी कमर झुक गई है।''

बायजीद– ''माता! मैं पहले जिस काम को गौड़ मानकर चला गया था, उसी के महत्व को अब समझ गया हूँ। अब मेरा पहला काम होगा तुम्हारी सेवा करना। कठोर तप करके मैंने जो पाया वही मैं एक माता की सेवा करके पा सकता था।''

एक रात को माता ने पानी मांगा। बायजीद ने देखा घर के किसी बर्तन में पानी नहीं था, वे नदी से जल लाने गये। पीछे से माँ को नींद आ गई। पानी लेकर लौटने पर माता को सोई देखकर वे वहीं खड़े रहे। बहुत देर बाद माँ के जागने पर उसे पानी पिलाकर उन्होंने आशीर्वाद पाया। सर्दी होने के कारण पानी का बर्तन थामे रहने के कारण उनकी अंगुलियाँ ठिठुर गईं, परन्तु वे इस डर से कि बर्तन की आवाज से कहीं माँ जाग न जाये, बर्तन को हाथ में ही पकड़े रहे।

महर्षि बायजीद जब मक्का गये थे तब वे हर एक कदम पर स्तोत्र पाठ करते–करते वहाँ बारह वर्ष में पहुँचे थे। उनका कहना था– ''काबा का द्वार इस पृथ्वी के किसी राज्य का द्वार नहीं है कि उसमें एकदम दौड़कर कोई भी घुस जाये, वह तो सारे ब्रह्माण्ड के राजाधिराज के मन्दिर का द्वार है, उसमें अनेक साधनाओं के बाद ही प्रवेश किया जा सकता है।''

मक्का के दर्शन करके वे मदीना के दर्शन के लिए नहीं गये, पर घर लौटकर फिर दूसरी बार मदीना की यात्रा के लिए गये। एक ही यात्रा में दोनों तीर्थों का मतलब सिद्ध कर लेना उन्हें ठीक नहीं मालूम दिया। मक्का जाते समय उनके तप का प्रभाव देखकर सैकड़ों आदमी उनके साथ हो गये थे।

बायजीद ने कहा है – ''बारह वर्ष तक अपने अन्तःकरण रूपी दर्पण को निर्मल करने के लिए मैंने मेहनत की है। अपने जीवन को साधना में रखकर उसे पश्चाताप से शुद्ध किया है। अनेकों साधनाओं के बाद यह दर्पण स्वच्छ हुआ है। उसके बाद भी मै इस दर्पण को साधना और तप से साफ बनाये रख्रने में लगा रहा हूँ। फिर भी मैंने देखा है कि साधना के अभिमान का भूत मन में घुसा ही हुआ है। पाँच वर्ष तक मेहनत करने के बाद मैं उस भूत को बाहर कर पाया। उसके बाद ही मेरा जीवन विनय की प्रभा से प्रकाशित हो पाया है।''

महर्षि जुन्नन मिश्र ने अपने एक शिष्य को भेजकर बायजीद को कहलाया– ''हज करने के लिए जाते समय मैं पड़ाव में सोया रह गया और मेरे साथी आगे चले गये। मैं अकेला रह गया हूँ।''

उसके जवाब में बायजीद ने कहलाया– ''सारी रात बिना नींद के प्रभु का स्मरण करने वाला और दूसरे यात्रियों के उठने के पहले ही अपनी मंजिल तय कर लेने वाला ही सच्चा प्रभु भक्त और सत्तपुरुष है।'' यह जवाब सुनकर जुन्जुन मिश्र की आँखें हर्ष से भर आईं, उन्होंने कहा– ''बस्तामी! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तो ऐसी उन्नत अवस्था प्राप्त न कर सका किन्तु तुम तो उस अवस्था को पाने में समर्थ हुए हो।''

एक बार महात्मा अबुमुसा ने बायजीद से पूछा –''प्रभु की साधना में तुमको क्या कठिनता मालूम देती है।''

उन्होंने उत्तर दिया– ''बहुत समय से मैं कठोर निग्रह कर रहा हूँ, तो भी प्रभु के चरणों में मेरा मन स्थिर नहीं होने पाया है। मैं रोता हूँ, सिर धुनता हूँ तो भी वह स्थिर नहीं होता। जिस दिन उस प्रभु की पूर्ण कृपा होगी उसी दिन वह स्थिर होगा। अपने मन को स्थिर करने में ही मुझे सबसे ज्यादा कठिनाई मालूम देती है।''

महर्षि इयहा ने एक बार बायजीद को लिखा– ''मुझे आपके साथ बहुत सारी बातें करनी हैं। हम दोनों के लिए यदि स्वर्ग में कोई स्थान तय हुआ है तो वहीं बैठकर सब बातें होंगी। उस पत्र के साथ उन्होंने जमजम के जल में तैयार की गई रोटी का एक टुकड़ा भी प्रसाद के रूप में भेजा। पत्र और प्रसाद पाकर उन्होंने उत्तर लिखा– ''जहाँ ईश्वर की चर्चा होती है, वहीं स्वर्ग है। आपके भेजे प्रसाद में जमजम तो है किन्तु आपने यह नहीं लिखा कि उसका आटा कैसा है ?''

यह उत्तर पाकर इयहा बायजीद से मिलने के लिए उत्कण्ठित हो उठे। वे उनसे मिलने गये। उन्होंने स्वयं कहा है – ''रात की नमाज के समय मैं उनके यहाँ पहुँचा। उस समय बायजीद किसी से मिलते न थे, इसलिए मुझे सबेरे तक ठहरना पड़ा। सबेरा होने पर मालूम हुआ कि वे अपनी झोपड़ी में नहीं हैं, वे कब्रिस्तान में बैठकर साधना में लगे हुए हैं। मैं वहाँ पहुँचा और बहुत देर तक उनकी तरफ आँखें लगाये रहा पर वे तो प्रभु के ध्यान में मग्न थे। मुझे लोगों से मालूम हुआ कि सारी रात उन्होंने ऐसे ही प्रभु के सानिध्य में बिताई है। सबेरे की नमाज पढ़ लेने के बाद उन्होंने नेत्र खोले। मैंने प्रणाम किया, बहुत ही प्रेम से उन्होंने मेरे साथ गहन विषयों पर बातें की। अन्त में उन्होंने कहा– ''इयहा मुझे इस बात की लज्जा का बोध होता है कि मैंने कहा है कि मैं ईश्वर को जानता हूँ, क्योंकि सच तो यह है कि कोई भी उसे पूरी तरह से नहीं जान पाता। अपना पूरा ज्ञान तो स्वयं उसे ही है। ऐसे असीम परमात्मा के आगे मैं कौन ? इयहा! सौ बातों

की एक बात है कि खुद उसके सिवा कोई दूसरा उसे पूरी तरह से जान ही नहीं पाता।''

एक रात को बस्तामी कब्रिस्तान में जा रहे थे। रास्ते में एक बदचलन जवान तँबूरा बजाकर मौज–मजा कर रहा था। बायजीद उसके पास से 'ओ प्रभु! तू ही महान और अमर है।' ऐसा कहते हुए निकले। अपने आनन्द में बाधा पड़ी देखकर उस जवान ने क्रोध में आकर अपना तँबूरा उनके सिर पर दे मारा जिससे तँबूरा और उनका सिर दोनों फूट गये। परन्तु बायजीद बहुत नम्र भाव से वहाँ से चले आये। दूसरे दिन सबेरे उन्होंने अपने एक शिष्य के द्वारा तँबूरे की कीमत और एक मिठाई का थाल उस जवान के पास भेजकर विनय और आग्रहपूर्वक कहलाया– ''गत रात को मेरे मस्तक से तुम्हारा तँबूरा टूट गया था, मेहरबानी करके उसकी कीमत को मंजूर करो। एक नया तँबूरा मंगा लेना। मिठाई इसलिए भेजी है कि उसे खाकर तुम्हारा क्रोध शांत हो जाय।''

महर्षि ऐसा व्यवहार देखकर वह जवान पिघल गया और आकर उनके पैरों में गिर गया। अपने किये का पछतावा करते हुए माफी माँगने लगा।

एक दिन किसी ने उनसे उनकी उम्र पूछी तो उन्होंने बतलाया– 'चार वर्ष।' इस जवाब का मतलब समझाते हुए उन्होंने आगे कहा– ''सत्तर वर्ष तक तो मैं संसार के मोहजाल में फँसा रहा, आखिरी चार वर्ष ही से मैं उस जाल से छूटकर प्रभु की साधना करने लगा हूँ। जितने समय तक मैं उस जाल में फँसा रहा उसे अपनी उम्र में क्यों गिनूँ।''

बायजीद कभी अपनी आजीविका की चिन्ता तो करते ही नहीं थे। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि प्रभु अवश्य रोटी देगा। जब कभी कोई परमेश्वर का गुणगान करता तो उनका चेहरा आनन्द से खिल उठता और जब कोई उनका गुणगान करता तो वे नाराज होकर उठकर वहाँ से चले जाते।

वे ईश्वर से इस प्रकार प्रार्थना किया करते थे– ''हे दीनानाथ! मैं तो ऐसा निर्बल और अयोग्य हूँ कि अपना सारा समय आपकी साधना में नहीं बिताता। रात की उपासना भी बराबर नहीं होती और मैं ज्यादा रोजा भी

नहीं कर पाता। बार-बार धर्मग्रन्थों का अध्ययन भी मुझसे नहीं बन पड़ता, जिसके कारण आपका यथार्थ वर्णन करने वाली स्तुति भी मुझे नहीं आती। क्या कहूँ, प्रभो! शर्म से मैं गड़ा जा रहा हूँ। सत्तर वर्ष तक मैं नास्तिक ही बना रहा। और अब जीवन के आखिरी समय में मैंने विश्वास की धरती पर कदम रखा है। अपनी जिव्हा को भी मैंने आपके गुणगान में अब लगाया है। मैं जो कुछ किया है वह तृण के समान है। हे दयालु! आपने मेरे अनेक अन्यायों को देखा है, मुझे क्षमा करें। मैंने तप किया है, आपकी साधना की है, मेरे ऐसे अभिमान को आप नष्ट कर दें, मेरे पापों को आप अपनी कृपा से धो दें।

बायजीद का सारा जीवन ईश्वर के भजन-स्मरण में ही बीता। उनका देहान्त भी ईश्वर का नाम लेते-लेते ही हुआ था।

उपदेश वचन

1. जो मनुष्य साधना रूपी हथियार से दुनियाँ की सारी कामनाओं का नाश कर देता है, जिसकी सारी आकांक्षायें एक प्रभु-प्रेम में अदृश्य हो जाती हैं, जिस प्रकार ईश्वर रखना चाहता है, उसी प्रकार जो रहता है, उसी को सच्चा योगी और पुरुषार्थी समझो।
2. अभिमानपूर्वक की हुई हजारों तपश्चर्यायों से पाप के लिए किया हुआ एक गहरा पछतावा भी श्रेष्ठ है।
3. साधना के लिए जो कुछ करना पड़े सब करना, परन्तु उसमें भी प्रभु-कृपा का प्रताप ही समझना। अपना पुरुषार्थ नहीं।
4. जो अपना परिचय ईश्वर ज्ञानी कह कर देता है, वह मूर्ख है। जो यह कहता है कि मैं उसे नहीं जानता, वही ज्ञानी है।
5. या तो जैसे बाहर से दिखाते हो वैसे भीतर से बनो, नहीं तो जैसे भीतर से हो वैसे ही बाहर से दिखाओ।
6. तीन बातें ध्यान देने लायक हैं-

1. जब कभी किसी खराब आदमी से काम पड़ जाये तो उसके नीच स्वभाव को अपने भले स्वभाव से ढक लेना।
2. जब कभी कोई तुम्हें दान दे तो पहले उस प्रभु का कृतज्ञ होना उसके बाद उस उदार–दाता को धन्यवाद देना।
3. जब कभी विपत्ति आ पड़े तो तुरन्त विनीत भाव से उस विपत्ति को सह लेने के लिए प्रभु से प्रार्थना करना।

7. मनुष्य का सच्चा कर्त्तव्य क्या है ? ईश्वर के सिवा किसी दूसरे से प्रीति न जोड़ना।

यह कहानी तब की है जब भगवान् राम माँ सीता को दुष्ट रावण के चंगुल से छुड़ाने के लिए लंका तक जाने के लिए एक पुल का निर्माण कर रहे थे। माँ सीता तक पहुँचने वाले इस पुल के निर्माण में महाबली हनुमान और उनकी पूरी वानर सेना लगी थी। महावीर हनुमान और उनकी पूरी वानर सेना बड़े–बड़े पत्थरों पर ''श्री राम'' लिखकर पुल का निर्माण कर रही थी। तभी भगवान् राम की नजर एक गिलहरी पर पड़ी, जो पहले समुद्र किनारे पड़ी धूल पर लोट कर धूल अपने शरीर पर चिपका लेती और फिर पुल पर आकर झिटक देती। वह लगातार इस काम को करती जा रही थी। काफी देर तक उस गिलहरी को ऐसा करते देख भगवान् राम उस गिलहरी के पास गए और गिलहरी को प्यार से अपने हाथों से उठा कर बोले– यह तुम क्या कर रही हो।

गिलहरी ने भगवान् राम को प्रणाम किया और बोली– महाबली हनुमान और उनकी पूरी सेना बड़े–बड़े पत्थरों से इस पुल का निर्माण कर रही है, लेकिन में छोटी सी गिलहरी यह सब नहीं कर सकती इसलिए मुझसे जितना बन पड़ रहा है मैं वो कर रही हूँ। मैं भी इस काम में अपना छोटा सा योगदान देना चाहती हूँ। भगवान् राम गिलहरी के इस भाव से बहुत ज्यादा प्रसन्न हुए और गिलहरी की पीठ पर प्यार से हाथ फेरने लगे। कहा जाता है की उस निस्वार्थ प्रेम में इतनी ताकत थी की गिलहरी की पीठ पर आज तक भगवान् राम की धरियों के निशान हैं।

कहानी का तर्क यही है, कि किसी भी काम में हमारा योगदान चाहे छोटा सा हो लेकिन निस्वार्थ भाव से किया गया काम हमेशा बड़े परिणाम लेकर आता है।

फूल जैसा जीवन खिले और महके

प्रातःकाल का समय था, शान्त, शीतल समीर नवजीवन का उल्लास बिखेर रहा था। सुन्दर फूलों से सौरभ उड़ने लगा था और पक्षी आनन्द से कलरव कर उठे थे। ऐसी आनन्दपूर्ण बेला में रमण महर्षि अपनी कुटिया में प्रभु–स्मरण करने बैठे थे।

उसी समय एक युवक वहाँ आया।युवक के चहरे पर जहाँ उत्साह और उमंग होना चाहिए था, वहाँ था उदासी, निराशा और अनुत्साह। वह बहुत निराश और दुःखी दिखाई देता था।वह चुपचाप आकर मुँह लटकाकर महर्षि रमण के सामने बैठ गया।उसे इस स्थिति में देखकर महर्षि ने पूछा–"क्यों भाई, क्या बात है ? ऐसे उदास ओर दुःखी क्यों दिखाई देते हो ? युवक ने एक लम्बी साँस बाहर निकाली और थके हुए स्वर में उत्तर दिया–"महर्षिवर! मैं जीवन से बहुत निराश हो गया हूँ। कारण ये है कि मैं जिस कार्य में भी अपना हाथ डालता हूँ उसी में असफल होता जाता हूँ। चिन्ताओं ने मुझे घेर लिया है। अब तो चाहता हूँ कि ऐसे असफल जीवन का अन्त ही कर दूँ।"

यह निराशापूर्ण कथन सूनकर महर्षि ने कोई उपदेश उस युवक को नहीं दिया। केवल इतना कहा – "देखो, वह फूल खिला हुआ है न! जाओ, उसे तोड़कर फेंक आओ।" युवक क्षण दो क्षण विचार में पड़ा रहा, फिर बोला – "महर्षि! यह आप कैसी आज्ञा दे रहे हैं ? इतना सुन्दर फूल है, उसे तोड़कर कैसे फेंक दूँ ?" "तो फिर यह जो इतना दुर्लभ मानव जीवन तुम्हें मिला है, इसका अन्त कर देने का विचार भी तुम्हे कैसे आया ?" महर्षि ने प्रश्न किया।

उत्तर में युवक ने इतना ही कहा– "अब मैं समझ गया, महर्षि! निराशा को त्यागकर नये उत्साह से, नई आशा से, नए विश्वास के साथ जीवन में आगे बढ़ूँगा।" महर्षि के दिव्य मुखमंडल पर मधुर मुस्कान आई। युवक उन्हें प्रणाम कर नये जीवन का शुभारम्भ करने चला।

एक बार की बात है। वृन्दावन में एक संत रहा करते थे। उनका नाम था कल्याण, वे बाँके बिहारी जी के परमभक्त थे। एक बार उनके पास एक सेठ आया। अब था तो सेठ, लेकिन कुछ समय से उसका व्यापार ठीक से नहीं चल रहा था। उसको व्यापार में बहुत नुकसान हो रहा था। सेठ उन संत के पास गया और उनको अपनी सारी व्यथा बताई और कहा, महाराज मेरे व्यापार में कुछ दिनों से काफी नुकसान हो रहा है आप कोई उपाय करिये। संत ने कहा सेठ जी अगर मैं ऐसा कोई उपाय जानता तो आपको अवश्य बता देता। लेकिन मैं ऐसी कोई विद्या नहीं जानता जिससे मैं आपके व्यापार को ठीक कर सकूँ, ये मेरे बस में नही है। हमारा तो एक ही सहारा है, बिहारी जी।

इतनी बात हो ही पाई थी, कि बिहारी जी के मंदिर खुलने का समय हो गया। संत सेठ जी को बिहारी जी के मंदिर में ले आये और अपने हाथ को बिहारी जी की ओर करते हुए सेठ जी को बोले, आपको जो कुछ भी मांगना है, जो कुछ भी कहना है, इनसे कह दो। ये सबकी कामनाओं को पूर्ण कर देते है। सेठ जी ने बिहारी जी से प्रार्थना की, दो चार दिन वृन्दावन में रुके और फिर चले गए। कुछ समय बाद सेठ जी का सारा व्यापार धीरे–धीरे ठीक हो गया। अब सेठ जी समय–समय पर बिहारी जी के दर्शन करने वृन्दावन आने लगे। लेकिन कुछ समय बाद सेठ जी थोड़े अस्वस्थ हो गए, वृन्दावन आने की शक्ति भी अब उनके शरीर मे नहीं रही। एक बार उसका एक जानकार वृन्दावन धाम की यात्रा पर जा रहा था इस बात को जानकर सेठ जी को बड़ी प्रसन्नता हुई! सेठ जी ने उसे कुछ पैसे दिए (750 रुपये) और कहा कि ये धन तू बिहारी जी की सेवा में लगा देना और उनको पोशाक धारण करवा देना। वो भक्त जब वृन्दावन आया तो उसने सेठ जी के कहे अनुसार बिहारी जी के लिए पोशाक बनवाई और उनको भोग भी लगवाया। लेकिन इन सब व्यवस्था में धन थोड़ा ज्यादा खर्च हो गया। लेकिन उस भक्त ने सोचा, चलो कोई बात नहीं, थोड़ी सेवा बिहारी जी की हमसे भी बन गई।

अब इधर मंदिर बंद हुआ तो बिहारी जी रात को सेठ जी के स्वप्न में पहुँच गए। सेठ जी को स्वप्न में ही बिहारी जी ने कहा, तुमने जो मेरे लिए सेवा भेजी थी वो मैंने स्वीकार की, लेकिन उस सेवा में 249 रुपये ज्यादा लगे हैं, तुम उस भक्त को ये रुपये लौटा देना। ऐसा कहकर बिहारी जी अंतर्ध्यान हो गए। सेठ जी की जब सुबह आँख खुली तो वे बिहारी जी की लीला देख कर आश्चर्य चकित रह गए। सेठ जी जल्द से जल्द तैयार हो कर उस भक्त के घर पहुँच गए और उसको सारी बात बताई। यह सब जानकर वो भक्त आश्चर्य चकित रह गया, कि ये बात तो सिर्फ मैं ही जनता था और तो मैंने किसी को बताई भी नहीं। सेठ जी ने उनको वो 249 रुपये दिए और कहा, ''मेरे सपने में श्री बिहारी जी आए थे, वो ही मुझे ये सब बात बता कर गए हैं'', ये लीला देखकर वो भक्त खुशी से मुस्कुराने लगा और बोला जय हो बिहारी जी की इस कलयुग में भी हमारे बिहारी जी किसी का कर्ज किसी के ऊपर नहीं रहने देते। जो एक बार इनकी शरण ले लेता है। फिर उसे किसी से कुछ माँगना नहीं पड़ता, उसको सब कुछ मिलता चला जाता है।

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार–शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम–सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट–छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद–201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी–66, सैक्टर–6, नोएडा–201301